United International Journal of Multidisciplinary Research
ISSN: 3048-6726 (UIJMR) Impact Factor: 6.934 (SJIF)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
www.uijmr.in Vol-3, Special Issue-II ,2026

हिंदी उपन्यासों में पर्यावरण परिरक्षण

डॉ. सुरेंद्र सादी
शासकीय डी.के. महिला महाविद्यालय,नेल्लूर, आंध्र प्रदेश

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को आदिकाल से ही प्रमुख स्थान दिया गया है और प्रकृति के पंच महाभूत जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के संतुलन पर ही मानव-जीवन को आधारित मानकर आहार-विहार से पर्यावरण को जोड़ा गया। आज मानव जीवन के सामने सबसे बड़ी चुनौती पर्यावरण और आधुनिकीकरण के सामने सामंजस्य बिठाना है। जिसे तेजी से जंगलों की कटाई और पर्यावरण को कुचलकर तेजी से आर्थिक विकास की अंधी दौड़ में भागने लगे हैं। ऐसे में हम पारिस्थितिक के तंत्र को छति पहुँचाने लगे हैं। जीवन के चक्र को सुरक्षित रखने के लिए पर्यावरण को संतुलित और सुरक्षित रखना अत्यंत आवश्यक है।

रणेंद्र ने अपने उपन्यास 'गायब होता देश' में प्रकृति और पर्यावरण की चिंता और परिरक्षण को दर्शाया है। एक दिन अचानक देश दुनिया के नक्शे से गायब हो जाता है। वे लिखते है- "प्रकृति के प्रति आभार कृतज्ञता है क्योंकि वृक्ष न होते हरियाली न होती तो प्रकाश संश्लेषण की क्रिया कैसी होती? प्राणवायु कहाँ से आती? जीव-जगत अस्तित्व में कैसे आता?...यग सिंगबोंगा की ही कृपा है कि उन्होंने न केवल वनस्पति जगत को पवित्र और पूज्य बनाया बल्कि मरांग बुरू पहाड़ को भी बोंगा पहाड़ को भी देवता के पद से नवाजा है।"1 यहाँ स्पष्ट होता है कि जहां जंगल सुंदरता के साथ-साथ उसका कम दिखना खतरनाक होने का इशारा है। बृजेश कुमार का कहना है कि- "हमारी मानसिकता उपभोगवादी बन गई है। हम मान चुके हैं कि नदियाँ, समुद्र, वायु, ग्रह, नक्षत्र सब हमारी संपदा हैं और हम मनचाहे ढंग से इनका उपयोग और उपभोग कर सकते हैं। ऐसा करके हम अपने ही अस्तित्व को समाप्त करने की ओर अग्रसर हैं। वनस्पतियाँ, कीट-पतंगे, पशु-पक्षी सभी हमारे आहार के साधन बन गह हैं। क्या इनका अपना कोई अस्तित्व नहीं है? क्या मनुष्य के अतिरिक्त और किसी प्राणी, जीव या वनस्पति को अपना जीवन जीने का अधिकार नहीं है? क्या कभी सोचा है कि हम अपनी दवाइयों का परीक्षण चूहों, बिल्लियों, बंदरों आदि जैसे निरीह जीवों पर ही क्यों करते हैं? आधुनिक मानव अपने बुद्धि-बल से सब पर विजय प्राप्त करना चाहता है। वह प्रकृति के स्वतंत्र अस्तित्व को छिन्न-भिन्न करने में लगा हुआ है और यह भूल गया है कि वह स्वयं प्रकृति का ही एक अंग है। उससे छेड़-छाड़ करके वह अपना अस्तित्व संकट में डाल रहा है। यह प्रक्रिया तीव्र से तीव्रतर हो रही है। इस पर तत्काल अंकुश लगाया जाना आवश्यक है।"2 पर्यावरण हमारे जीवन का अनिवार्य अंग है। पर्यावरण अदृश्य होते हुए भी मनुष्य और मनुष्येतर प्रकृति के विशेष महत्वपूर्ण है। आज पर्यावरण संरक्षण और उसकी चिंता समय की माँग है। यह देखा सकता है कि मनुष्य अपने विनाश का कारक

स्वयं ही बन बैठा है। वह अपने लालच और स्वार्थ में अंधा बनकर अपने पर्यावरण को क्षति पहुँचा रहा है।

रणेंद्र के 'ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास का प्रारंभ ही एक असुर मंत्र से होता है, जो मानव और प्रकृति के संबंधों को दर्शाता है। उपन्यास का नायक शिक्षक की नौकरी करने के लिए आदिवासी क्षेत्र में आता है। जंगल की जो हरी भरी मनोरम छटा आमजन के दिमाग में केंद्रित होती है, उसके विपरीत उपन्याकार ने कुछ इस तरह चित्रित किया है जैसे धरती पर खदानों के गड्ढे उसके चेहरे पर धब्बे की तरह दिखाई देते हैं। उपन्यासकार के शब्दों में- "छिटपुट जंगल, बाकी खाली दूर-दूर तक फैले उजाड़ बंदर से खेत। बीच-बीच में बॉक्साइट की खुली खदानें। जहां से बॉक्साइट निकाले जा चुके है। वह गड्ढे भी मुंह बाये पड़े थे, मानो धरती माँ के चेहरे पर चेचक के बड़े-बड़े धब्बे हो।"3 असुर जनजाति के लोग प्रकृति को ही सबकुछ मानते हैं।

विवेकी राय ने 'समर शेष है' में पर्यावरण का यथार्थ चित्रण किया है। झारखंड में आदिवासियों पर महाजनी अत्याचार के विरुद्ध शिबू सोरेन द्वारा चलाए गए जन आंदोलन को केंद्र में रखकर लिखा गया यह उपन्यास पर्यावरण और मानवीय मूल्यों की अमूल्य गाथा है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि शहर की तुलना में गांव आज भी प्रकृति से समृद्ध है। बढ़ते औद्योगीकरण और बाजारवाद के कारण उनके सामने कई समस्याएँ सामने आयी है। उपन्यासकार ने लिखा है- "गांव अब तक अपने प्राकृतिक संसाधनों के बलबूते चलता आ रहा था किंतु बाहरी वस्तुओं के आगमन से उनकी दिनचर्या एवं साप्ताहिक हाट में भी परिवर्तन हुआ – हेडबरगा में इन्हीं लोगों ने साप्ताहिक हाट लगवाना शुरू किया। हाट के टिकुली, बिंदी, काजल, आईना, कंघी, किरासन तेल, नमक, कचौड़ी-फुलैरी की दुकानें सजाई जाती। बाद में मिट्टी और अनुमिनियम के बर्तन, चाकू, छुरियाँ, खुरपी, कुदाल आदि भी आने लगे। इनमें से बहुत सी वस्तुएँ ऐसी थी, जिनकी जरूरत आदिवासियों को नहीं थी, लेकिन धीरे-धीरे वे उनकी जरूरत बनने लगीं। आदिवासियों के पास आमतौर पर पैसे नहीं होते थे। इसकी कीमत में वे धान, लाह, महुआ के मौसम में महुआ के फल-फूल से चुकाते। बदला-बदली का कोई मानक रूप नहीं था। बाद में धान के बदले या अन्य वन्य सामग्रियों के बदले बनिया लोग पैसे भी देने लगे। लेकिन वह पैसा लौटकर उन्हीं के पास आ जाता।"4 वन और पहाड़ों के काटने से बरसात का अभाव दिखाई देने लगा है। इस कारण जलस्रोत सूखने लगे हैं और भूजल स्तर नीचे जाने लगा है। अवैध निर्माण ने भूमि के स्खलन का मार्ग प्रदर्शित किया है। इन घटनाओं से प्राकृतिक आपदाएँ घटने लगी हैं। नदियों से अवैध तरीके से निकाली जा रही रेत-बजरी ने भी परिस्थितिक संकट निर्माण किया है।

नासिरा शर्मा के 'कुइयाँजान' उपन्यास में पर्यावरण के महत्व को विस्तार से दर्शाया है। इस उपन्यास के केंद्र में जल की समस्या का चित्रण है। पानी के न होने पर एक दिन उस गली का जीवन इतना दुस्सह बनता है कि सब बेचैन हो जाते हैं। पर पाइप में लाल पानी के आने की बात सुनकर उपन्यास की एक पात्र लालची चिंता में कहती है- "हमने पानी तो डूब लिया मगर जो देना था वह नहीं दिया। इस धरती पर हुए अत्याचार ही हमें आज इस दुर्दशा में डाले हुए है फिर भी हम होश में नहीं आ रहे हैं। पहले धर्म को लेकर धर्मयुद्ध होते थे, फिर सीमा को लेकर तलवार खींचती थी। और अब देखता कुरेशी भाई जल को लेकर प्रांतों के बीच युद्ध छिड़ेगा ताजूब नहीं कि यह गृह युद्ध एक दिन विश्वयुद्ध में बदल जाए।"5 उपन्यासकार नासिरा शर्मा ने भविष्य के प्रति आकांक्षा व्यक्त कर पात्रों के जरिए अपना प्रतिरोध दर्ज करने किया है। लेखिका जल की समस्या को लेकर चिंतित है। उपन्यास 'धार' में औद्योगिकरण के कारण निर्मित पारिस्थितिक आघातों का चित्रण है। पूंजीपतियों की धन लालसा और चालाकियों के कारण जेल गयी मैना की वापसी के साथ उपन्यास का प्रारंभ होता है। यह मैना की संकट गाथा है, जो अस्तित्व के लिए कराहती है। अस्तित्व के संकट से गुजरने वाले बासगड़ा के लोग काम और रोजी-रोटी के लिए अपनी खेती भूमि तेजाब फैक्ट्री बनाने के लिए देते हैं। धीरे-धीरे फैक्ट्री से निकलनेवाला जहरीला धुआँ, कुड़ा-कचरा, गांव की हरियाली को नष्ट कर देता है और वहाँ के लोगों का जीवन दुस्सह बन जाता है। उपन्यास के एक मात्र मामा कहता है- "बोले तेजाब का कारखाना से खेत-बडी कुआँ पोखरा। सब खराब होता इसके बंद करो मजदूर फूट गए तो बेचरा फौकल, मेना का मरद, बाहस से मजदूर ले आया, सबको भी फोड़ दिया।"6 इससे पूरा गांव संकटग्रस्त बनता है। खनिज उद्योगों को बढ़ावा बासगड गांव और वहाँ की प्रकृति और पर्यावरण के नाश का कारण बनता है।

वीरेंद्र जैन के 'डूब' उपन्यास में डूबते हुए एक क्षेत्र का चित्र हमारी आँखों के सामने आता है। यह उपन्यास एक गांव तक सीमित न रहकर पूरे देश का प्रतिनिधित्व करता है। आज के दौर में विकास के नाम पर होनेवाले प्राकृतिक शोषण और विस्थापित होनेवाली आम जनता के संकट को वीरेंद्र जैन ने बड़ी तन्मयता के साथ दर्शाया है। उपन्यासकार के शब्दों में- "डूब विकास की अब तक चली आदि अवधारणा और उपलब्धियाँ पर ही प्रश्न लगाता है। यह कई स्तर पर हिंदी लेखन में उद्भव मचाता है।"7 इस उपन्यास में वर्तमान समस्या की ओर संकेत करता है, जो भविष्य में भयावह स्थिति का सामना करना पड़ेगा। विकास के नाम पर होनेवाले बांध निर्माण प्राकृतिक संसाधनों को ही नहीं पूरे गांव के अस्तित्व को भी डूबाता है। उपन्यास का मुख्य पात्र माते के द्वारा विकास विरोधी मानसिकता को उपन्यासकार ने उजागर किया है। विकासरूपी धोखेपन और पूँजीपति और अधिकारी वर्ग के खोखलेपन को लेखक ने समाज के सामने रखा है। ग्रामीण जीवन की जीवंतता और सहजता को पूरी क्षमता के साथ पकड़ने का प्रयास भी लेखक ने

किया है। यह उपन्यास बनते बिगड़ते ग्रामीण अंचल के सौंदर्य और वहाँ के लोगों के अस्तित्व संघर्ष की गाथा है। बाँध के टीले में दरार पड़ने से पंचमनगर गांव पानी में डूबता है। यह देखकर कराह देनेवाले माते के चित्रण के साथ उपन्यास समाप्त होता है। यह कराह उस व्यवस्था के प्रति है, जिसने उनके अस्तित्व को तोड़ा है। यह उपन्यासकार की प्रतिरोधी कराह है, जो माते के जरिए उजागर किया है। इस प्रकार 'डूब' आंचलिक परिप्रेक्ष्य में लिखा गया उपन्यास है।

राकेश कुमार सिंह ने 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में पर्यावरण के साथ किए जानेवाले खिलवाड़ को दर्शाया है। उपन्यासकार के शब्दों में- "झाड़-झंखाड़ से भरे इस भूखंड झारखंड में अधिकांश रेलपथ या सड़के आम जनता की सुविधा-असुविधा के ध्यान में रखकर बनी भी नहीं है। असल में यातायात के लिए ऐसी सड़के निर्मित ही नहीं होती यदि झारखंड की जादुई जमीन के गर्भ में अकूत संपदा और जमीन के ऊपर धन-ही-धन बिखरा होता। खनिज, अयस्क, कोयला और वेशकीमती वनोपज के रूप में। इस वन प्रांत में रेल और सड़कें, जंगल के मरणों तक दोहन के उन्हीं उद्देश्यों हेतु निर्मित हुई है, जिन उद्देश्यों की बलि चढ़ते रहे हैं कई और वन्य वन। कुमाई गढ़वाल के हजारों वृक्ष रेल की पटरियों तले स्लीपर बिछाने हेतु कत्ल कर दिए गए। क्या झारखंड की पटरियाँ भी आम आदमी हेतु बिछाई गयी थी।"8 खनिज संपदा को दोहन किया जाने लगा है। राजनीति में फैले इस भ्रष्टाचार के कारण भारत में दो स्थितियाँ पैदा हुई हैं। एक ओर दिल्ली, मुंबई, कलकत्ता, चेन्नई, हैदराबाद, पुणे, नागपुर, भोपाल, चंडीगढ़, बैंगलोर, रांची है, तो दूसरी ओर दूर-दराज के क्षेत्रों में यानी उड़िसा का कालाहाड़ी जैसा स्थान है। एक ओर लोग चमकती बहुमंजिली इमारतों में निवास करते हैं, तो दूसरी ओर झुग्गी-झोपड़ियों में लोग रहने पर मजबूर है। उपनयासकार के शब्दों में- "विकास की बयार मानो इधर से होकर कभी गुजरी ही नहीं। पटना-रांची का भारत कुछ और है, दिल्ली की इंडिया कुछ और है। देश-राज्य की राजधानियों के बाहर, गजलीठोरी जैसे जगहों का हिंदुस्तान वहीं का वहीं ठिठका खड़ा है जहाँ सौ-पचास वर्ष पूर्व था।"9 आज के समय में नदियों की जोड़ने की बात पुरजोर से उठाई जा रही है, लेकिन वास्तव में कोई काम होते दिखाई नहीं देता है।

अत: समकालीन हिंदी उपन्यासकारों इन स्थितियो को लेकर पर्यावरण के परिररक्षण पर चिंतन किया हैं। वर्तमान में पर्यावरणीय समस्याओं में ओजोन परत का क्षय, वृक्षों की कटाई, ग्लिशयरों का पिघलना, प्रदूषित जल, प्रदूषण, भूस्खलन, जलवायु परिवर्तन आदि मानव समाज को अपनी जीवनशैली के बारे में पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करती है। मानव जीवन के लिए शुद्ध पर्यावरण का होना अत्यंत आवश्यक है। बगैर पर्यावरण के स्वस्थ जीवन यापन करना मुश्किल है।

संदर्भ :

1. रणेंद्र – गायब होता देश, पृ.सं. 2
2. संपादक – श्री बृजभान – पर्यावरण (जलवायु परिवर्तन विशेषांक), अंक-68, पृ.सं. 31
3. रणेंद्र – ग्लोबल गांव के देवता, पृ.सं. 9
4. विवेकी राय – समर शेष है, पृ.सं. 9
5. नासिरा शर्मा – कुइयांजान, पृ.सं. 89
6. संजीव – धार, पृ.सं. 49
7. वीरेंद्र जैन – डूब, पृ.सं. 1
8. राकेश कुमार सिंह – पठार पर कोहरा, पृ.सं. 87
9. राकेश कुमार सिंह – पठार पर कोहरा, पृ.सं. 135